Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

शैक्षिक गुणवत्ता और शिक्षकीय कौशल

डॉ. विनय कुमार
प्राचार्य,
त्रिवेणी कॉलेज ऑफ एजुकेशन,
नवादा, बिहार, भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 5
Page Number: 151-155

Publication Issue :
September-October-2020

Article History
Accepted : 10 Oct 2020
Published : 20 Oct 2020

सारांश

शिक्षक का व्यवसायिक प्रशिक्षण कितना अहम हैं, इस ओर दवे 'शिक्षा में नवचिंतन' में जिक्र करते हैं कि टीचर प्रतिदिन अपने को नया करने तथा नए अंदाज में प्रस्तुत करने की मांग करता है। इसलिए एक टीचर को टीचिंग के लिए सदैव नवीनता की खोज करते रहना होगा। नवीनता के लिए जरूरी है कल्पना, कौतुक, जिज्ञासा और आनंद्दायी भावना। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षण एक आनंद्दायी काम है। इस आनंद का प्रतिदिन अन्वेषण करते रहना ही एक शिक्षक का कर्म और धर्म है।
मुख्य शब्द—शैक्षिक, गुणवत्ता, शिक्षकीय, कौशल, व्यवसायिक, कर्म, धर्म।

समाज के समुचित विकास और संवर्द्धन में जिन महत्वपूर्ण तत्वों में शिक्षा सुरक्षा और स्वास्थ्य आदि को शामिल किया जाता है, इनमें से कोई भी कड़ी यदि कमजोर पड़ती है तो समझना चाहिए कि समाज व देश का विकास सही और समुचित दिशा में नहीं हो रहा है। यदि उपरोक्त किसी भी एक के विकास पर ध्यान दिया जा रहा है तो इसका सीधा अर्थ यही निकलता है कि उस समाज का सर्वांगीण विकास नहीं हो रहा है। सरकारें आती जाती हैं लेकिन प्रतिबद्धताएं, समस्याएं, चिंताएं यथावत् समाधान के इंतजार में अपनी जगह पर बरकरार रहती हैं। हमने आजादी के बाद भी यह दुहराना नहीं छोड़ा कि समाज का विकास करना है तो शिक्षा को दुरूस्त करना होगा। वह 1952 की समिति हो, 1964—66 की कोठारी आयोग की संस्तुतियां हों, 1968 को राष्ट्रीय षिक्षा नीति हो, 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो, 1990—92 की आचार्य राममूर्ति पुनरीक्षा समिति हो, 2002 की संविधान के 86वें संशोधन के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकारों की धारा 21 में 'ए' को शामिल करना हो आदि। इन उपरोक्त समितियों, आयोगों और घोषणाओं आदि की रोशनी में हमें यह देखने की आवश्यकता है कि क्या हमने इन संस्तुतियों को प्राथमिक शिखा को बेहतर करने के लिए किस प्रतिबद्धता के साथ काम किया। इस बाबत जे0पी0 नाईक शिक्षा आयोग और

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

उसके बाद किताब में जिक्र करते हैं कि सार्जेंट रिपोर्ट ने प्रस्तावित किया था कि 6–11 वर्ष के सब बच्चों के लिए सर्वव्यापी प्रारंभिक शिक्षा 1984 तक उपलब्ध करा देनी होगी। नाईक आगे लिखते हैं कि 6–11 वर्ष के सभी बच्चों के लिए 1980–81 तक और 11–14 वर्ष के सभी बच्चो के लिए 1985–86 तक सर्वव्यापी शिक्षा प्रदान की जाए।

हर बार सरकारों ने शिक्षा संबंधी कई सारी घोषनाएं कीं, किन्तु प्राथमिक शिक्षा की दशा दिशा अभी भी हमारे तय लक्ष्य से दूर है। यहाँ यह भी बताते चलें कि 1968 में यह बात कहीं और स्वीकारी गई थी कि 1986 तक सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्रदान कर दी जाएगी। शैक्षिक गुणवत्ता को लेकर जिस प्रकार की चिंता शिक्षा जगत में देखी सुनी जाती है वह पर्याप्त नहीं हैं, क्योंकि शिक्षक वर्ग जिस शिद्दत से गंभीर व्यावसायिक प्रशिक्षण और अंतः सेवाकालीन प्रशिक्षण की मांग करते हैं उस ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितने की दरकार है। शिक्षा आयोग और उसके बाद किताब में जे0पी0 नाईक इस ओर ध्यान दिलाते हैं कि शिक्षा के स्तर सबसे अधिक शिक्षकों की गुणवत्ता, प्रतिबद्धता और योग्यता पर निर्भर करेंगे, अतः इनकी उन्नति के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहिए। अध्यापकों के चयन प्रक्रिया में सुधार हो और उनके कार्य और सेवा की शर्तों को संतोषजनक बनाने का प्रयत्न किया जाए। शिक्षक के प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सुधार हो, चुने हुए केन्द्रों में शिक्षा विद्यालय स्थापित किया जाए और प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण को विश्वविद्यालय प्रणाली में समेंकित किया जाए।

शिक्षा को सुचारू रूप से चलाने के आर्थिक मदद की जरूर पड़ती है। गौरतलब है कि 1964–66 में कोठारी आयोग ने तब सकल घरेलू उत्पाद के 6 फीसदी दिए जाने की सिफारिश की गई थी। यदि आज से 2012–13, 2013–14 और 2015–16 के बजट को देखें तो हम बामुश्किल 3 फीसदी ही शिक्षा को बेहतरी के लिए खर्च कर रहे हैं। वर्तमान सरकार ने शिक्षा के मद में दी जाने वाली आर्थिक सहायता राशि में ऐतिहासिक कटौती की गई। इसमें सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, मध्याह्न भोजन आदि में भारी कटौती की गई। इस पहल की आलोचना शैक्षिक क्षेत्र की हुई। तमाम शिक्षाविदों, अर्थशास्त्र के जानकार मानते हैं कि शिक्षा की गुणवत्ता और बच्चों की भविष्य को बेहतर बनाना है तो सरकार को शिक्षा के मद में कैंची नहीं चलानी चाहिए थी। यहां याद दिला दे ंतो 2000 में जब डकार में सम्मेलन हुआ जहां 1990 में घोषित सभी के लिए शिक्षा की पुनरीक्षा हो रही थी तब भारत सरकार ने कहा था कि हमें आर्थिक मदद चाहिए ताकि हम तय समय सीमा के भीतर शिक्षा के अधिकार को पूरा कर पाएं। यही वह वर्ष है जब वैश्विक स्तर पर भारत को तमाम श्रोतों से आर्थिक मदद मिलने शुरू हो गए।

सर्व शिक्षा अभियान के तहत करोड़ रूपए सरकार को हर वर्ष मिले। यदि इस लिहाज से देखें तो शिक्षा को उस अनुपात में सुधार नहीं हुए। आर्थिक मार झेल रही प्राथमिक शिक्षा को कैसे बेहतर बनाया जाए इसके लिए कई स्तरों पर योजनाएं बनाई गई। कोठारी आयोग ने कहा था कि यदि प्राथमिक शिक्षा में

गुणवत्ता सुनिश्चित करना है तो कक्षा में 25/1 यानी बच्चे और शिक्षक के अनुपात होने चाहिए लेकिन यह अनुपात सरकारी स्कूलों में अभी भी दूर की कौड़ी है। इसके पीछे के कारणों को सरकारी और गैर सरकारी संस्थानों इस रूप से पहचान हो कि हमारे स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक नहीं है। शिक्षकों की कमी को पूरा करने का एक वैकल्पिक रास्ता यह 1990 के आसपास यह निकाला गया कि हम कम प्रशिक्षित पैरा टीचर, शिक्षा मित्र, अनुबंधित शिक्षकों से कक्षा में शिक्षण का काम लेंगे। यह एक ऐतिहासिक कदम था। प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा मित्रों के हवाले शिक्षा को छोड़ दिया गया। प्रो0 अनिल सद्गोपाल की नजर में यह उदारीकरण और प्राथमिक शिक्षा में विश्व बैंक का प्रवेश काल था। प्रो0 सद्गोपाल आगे कहते हैं कि यह एक सरकारी तंत्र को भारत की हाथों से झीन का बाजार को सौंपने से कम नहीं था। हमने अपनी शैक्षिक नीति और दिशा तय करने के लिए विश्व बैंकों को आमंत्रित किया। आज भी प्राथमिक स्कूलों में देश भर में लाखों पद खाली हैं जिन पर शिक्षा मित्र और अनुबंधित शिक्षक खट रहे हैं। प्राथमिक शिक्षा में इस तदर्थवादी पहल ने प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता को खासा प्रभावित किया। शिक्षाविद् प्रेमपाल शर्मा शिक्षा–कुशिक्षा किताब में लिखते हैं कि आज प्राथमिक शिक्षा में सबसे भयावह स्थिति और बोझ समझ का तो है ही साथ भाषा के तौर पर अंग्रेजी की ज्यादा है। हमारे अधिकांश बच्चे अंग्रेजी के डर में जीवन जीते हैं। आज प्राथमिक शिक्षा यदि किसी बड़े संक्रमण काल से गुजर नहीं है तो वह भाषायी विस्थापन है। भाषायी समझ और विषयों शिक्षण में शिक्षक की अपनी तालीम काफी मायने रखता है। क्योंकि जिस तरह आज हमारे शिक्षक प्रशिक्षण पा रहे हैं वे खुद शंका के घेरे में है।

औपनिवेशिक व्यवस्था द्वारा लाए गए नौकरशाी में यह बात निहित थी कि पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों से संबंधित सारे फैसले वरिष्ठ प्रशासकों द्वारा ही लिए जाते थे। पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में शिक्षक की भूमिका पर नजर डालें तो पाएंगे कि शिक्षकीय भूमिका न के बराबर है। दस्तावेज तो दावा करते हैं कि शिक्षकों से राय ली गई लेकिन वास्तव में वह नक्कारखाने में तूती की तरह होती है।

प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता के सवाल को अपने समय के प्रसिद्ध हस्ताक्षरों ने दर्ज किया है। प्रो0 कृष्ण कुमार ने विभिन्न पत्रों में इस मसले को उठाया है। प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों की प्रशिक्षणीय कौशलों और पाठ्यक्रमों पर भी विमर्श करते हैं। अपनी किताब स्कूली हिंदी में चर्चा करते हैं कि शिक्षकों की हैसियत और सामाजिक पहचान भी प्रकारांतर से उसके व्यवसाय को प्रभावित करता है। वहीं शिक्षा के नए क्षितिज किताब में रमेश दवे लिखतें हैं कि प्राथमिक शिक्षा में शिक्षकों की कमी का असर कहीं न कहीं गुणवत्ता पर देखा जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि शिक्षकों को मिलने वाली पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षण उस स्तर के नहीं हैं जिसकी अपेक्षा शिक्षा शास्त्र में की जाती है। यही वजह है कि शिक्षा में जो भी गिरावट बताई जा रही है उसका जिम्मेदार सिर्फ और सिर्फ शिक्षक ही माना जाता है। जबकि इस गिरावट में शिक्षक एक मोहरे के तौर पर इस्तेमाल होता है। यदि हमारी योजना, पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यक्रमों और रणनीतियों में शिक्षक

को कोई अहम भूमिका नहीं होती तो वह कैसे अपनी हैसियत और हस्तक्षेप को सुनिश्चित कर सकता है। प्रो0 कृष्ण कुमार गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद में विमर्श करते हैं कि शिक्षक शिक्षा विभाग में सबसे छोटी इकाई होता है जिसकी कोई नहीं सुनता। यह सिर्फ अपनी कक्षा में निर्माता और सर्वेसर्वा होता है लेकिन समाज में उसकी हैसियत कमतर ही आंकी जाती है।

शिक्षक की गुणवत्ता और कौशल काफी हद तक कक्षायी शिक्षण को प्रभावित करता है। यदि हम इस दृष्टि से देखें तो प्रो0 कृष्ण कुमार अपनी किबात गुलामी शिक्षा और राष्ट्रवाद में चर्चा करते हैं कि जिन कारकों ने शिक्षकों को एक कमजोर पेशागत पहचान और हैसियत बख्शी है, उनमें एक पाठ्यचर्या के मामले में उसका कोई हाथ न होना भी था। औपनिवेशिक व्यवस्था द्वारा लाए गए नौकरशाही में वह बात निहित थी कि पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों से संबंधित सारे फैसले वरिष्ठ प्रशासकों द्वारा ही लिए जाते थे। पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में शिक्षक की भूमिका पर नजर डालें तो पाएंगे कि शिक्षकीय भूमिका न के बराबर है। कहने को हर दस्तावेज यह तो दावा करता है कि शिक्षकों से राय ली गई लेकिन सूक्ष्मता से देखें तो पाएंगे कि वह नक्कारखाने में तूती की तरह होती है।

शिक्षक की आवाज शैक्षिक विमर्शों में नजरअंदाज ही किया गया है। वरना शिक्षकीय समूह से उठने वाली शिकायतों पर ध्यान दिया जाता। शिक्षकों का बड़ा समूह आज भी यह आरोप लगाता मिल जाएगा कि किताबें बनाते वक्त हमसे कोई नहीं पूछता। अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा संघ के अध्यक्ष रामपाल सिंह का कहना है कि शिक्षा में यदि सबसे ज्यादा उपेक्षा किसी होती है तो वह प्राथमिक शिक्षक है। कोई भी प्राथमिक शिक्षा की नीति बनाने का मामला हो या किताबों का निर्माण हमें तो कमतर समझा जाता है। जितने भी शिक्षणेतर काम होते हैं वह प्राथमिक शिक्षकों के कंघों पर डाला जाता है। ऐसे में एक शिक्षक कक्षा में कैसे पढ़ाए। शिक्षकों का एक वृहद् समूह है जो पढ़ाना तो चाहता है लेकिन उसे पढ़ाने के अवसर नहीं मिलते। बाल गणना, जनगणना, बालिका गणना, भोजन वितरण, वजीफा बांटने जैसे अनुत्पादक और असृजनात्मक कामों में लगाए जाने का विरोध एक प्रतिबद्ध शिक्षक विरोध करता आया है। हालांकि डाइस की रिपोर्ट देखें तो पाएंगे कि पूरे साल में शिक्षकों से महज 12, 16 और 22 दिन ही इस तरह के कामों में लगाए जाते हैं लेकिन वास्तविकता तो कुछ और ही है। दर्ज न हुए कामों जो कहीं दस्तावेजों में नहीं होते, साल भर चलते रहते हैं और शिक्षक स्कूल में पढ़ाना छोड़ कर अन्य कामों में जोत दिए जाते हैं।

शिक्षण बतौर व्यवसाय चुनने वालों में लगातार गिरावट भी देखी गई है। आज के युवा जिस शिद्दत से मैनेजमेंट, आई0आई0टी0 एवं मल्टी नेशनल कंपनियों को ध्यान में रखते हुए विषयों और स्कूलों का चुनाव करते हैं। शिक्षा के हिस्से में बचे हुए, छटे हुए व कहें जीवन की अंतिम ख्वाहिश के तौर पर मजबूरन अपनाया जाने वाला व्यवसाय के तौर पर उभरा। यही वजह कि शिक्षण कर्म में आने वाले शिक्षकों की रूचि शिक्षा में बहुत बाद में पैदा होती है। ऐसे शिक्षकों की संख्या कम है जिन्होंने अध्यापन कर्म को प्रथमदृष्टया

चुना हो। इस पर कृष्ण कुमार लिखते हैं कि कैरियर की दृष्टि से स्कूली शिक्षण को सिर्फ वे युवक अपनाते थे, जिन्हें कोई और काम नहीं मिल सका होता था, और जब भी उन्हें किसी और काम में जाने का मौका मिलता था, मसलन किसी दफ्तरी नौकरी में, तो वे तुरंत उसमें चले जाया करते थे।

गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारणों में निश्चित तौर पर शिक्षक प्रशिक्षण प्रक्रिया करीब से देखी समझी जानी चाहिए। डी पी पटनायक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाषा को दिए जा रहे महत्व की ओर सुधि पाठकों का ध्यान अपनी पुस्तिका 'शिक्षा संदर्भ और भाषा' में खींचते हैं कि शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को देखने से पता चलता है कि इसमें भाषा से अधिक पद्धति पर ज्यादा जोर दिया गया है। मान लीजिए कि 6 घंटों में से 2 घंटे वास्तविक भाषा के लिए है और 4 घंटे भाषा पढ़ाने की पद्धति के लिए, जिसमें भाषा की भाषा तथा अपेक्षित और बेकार की विधियों की चर्चा ही अधिक लेती है। कहना होगा कि छात्रों की कमजोरी दूर करने में अक्षम शिक्षक ही हमें शिक्षा व्यवस्था से प्राप्त होंगे।

शिक्षक का व्यवसायिक प्रशिक्षण कितना अहम हैं, इस ओर दवे 'शिक्षा में नवचिंतन' में जिक्र करते हैं कि टीचर प्रतिदिन अपने को नया करने तथा नए अंदाज में प्रस्तुत करने की मांग करता है। इसलिए एक टीचर को टीचिंग के लिए सदैव नवीनता की खोज करते रहना होगा। नवीनता के लिए जरूरी है कल्पना, कौतुक, जिज्ञासा और आनंद्दायी भावना। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षण एक आनंद्दायी काम है। इस आनंद का प्रतिदिन अन्वेषण करते रहना ही एक शिक्षक का कर्म और धर्म है।

संदर्भ

1. नाईक, जे0पी0, शिक्षा आयोग
2. नाई, जे0पी0, शिक्षा आयोग
3. शर्मा, प्रेमपाल, शिक्षा, कुशिक्षा
4. कुमार, कृष्ण, गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद
5. डी पी पाट्टनायक, शिक्षा संदर्भ और भाषा
6. दवे, रमेश, शिक्षा में नवचिंतन

7- Loyd, Les. (Ed.), Technology and Teaching, Publication Information Medford, NJ : Information Today, 1997.

8- http://him.wikipedia.org.